हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवाद के सामाजिक आधारों का खतरनाक विस्तार

राकेश

पिछले दो दशकों के दौरान हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों ने आश्चर्यजनक रफ्तार से अपने सामाजिक आधारों का खतरनाक विस्तार किया है। एक समय देश की चुनावी राजनीति की परिधि पर पड़ी भारतीय जनता पार्टी आज केन्द्र की सत्ता पर काबिज है और अनेक राज्यों में वह दुसरी प्रमुख राजनीतिक शक्ति बन चुकी है। इससे भी खतरनाक बात यह है कि इन ताकतों ने देश की हिन्दू आबादी के एक बड़े हिस्से का मानस साम्प्रदायिकता के जहर से भर दिया है। यहाँ तक कि अपनी आक्रामक प्रचार रणनीति के जरिये इन्होंने शिक्षित युवाओं के बड़े हिस्से के बीच भी अच्छी-खासी पैठ बना ली है। ऐसे में किसी तात्कालिक सतही रणनीति के आधार पर इनसे लोहा लेने की बात भी नहीं सोची जा सकती। आज जरूरत है एक व्यापक एवं दूरगामी रणनीति और ठोस जमीनी कार्रवाईयों की। लेकिन इस पर चर्चा से पहले देश में हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवाद के प्रभाव-विस्तार के साथ ही उसके सामाजिक आधार के फैलने की प्रक्रिया पर एक नजर दौड़ा लेना गैर जरूरी नहीं होगा।

सामाजिक आधारों का धीरे-धीरे विस्तार

देश के आर्थिक- राजनीतिक विकास की जिस प्रक्रिया से गुजरते हुए संघ परिवार की राजनीतिक शाखा भारतीय जनता पार्टी आज बुर्जुआ राजनीति के हाशिये से उठकर केन्द्र की सत्ता तक पहुंची है उसी प्रक्रिया में धीरे-धीरे हिन्दू साम्प्रदायिक- फासीवाद का सामाजिक आधार भी फैलता गया है। व्यापारियों के बीच सीमित सामाजिक आधार 1980 के दशक के बाद तेजी से पसरते हुए आज विभिन्न सामाजिक वर्गों में पैठ चुका है।

व्यापारियों के बाद सबसे पहले संघ परिवार ने उत्तर भारत में तथा कथित सवर्ण जातियों के उन पुराने प्रतिक्रियावादी वर्गों के बीच अपनी जगह बनायी जिनका एक हिस्सा पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप गांवों के नये पूंजीवादी भूस्वामी वर्गों मे शामिल हो चुका है और उसका बड़ा हिस्सा गांवों का मध्यम किसान या शहरी मध्यवर्गीय नौकरी पेशा वर्ग बन चुका है। पहले यह वर्ग कांग्रेस का सामाजिक आधार हुआ करता था। फिर संघ परिवार की मध्यजातियों के बीच भी पैठ शुरू हुई। पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप यादव, कुर्मी, कोइरी, अवधिया, खटिक आदि जातियों का एक हिस्सा आज गांवों का नया कुलक-भूस्वामी वर्ग बन चुका है। आर्थिक स्थिति की इस मजबूती से इनकी राजनीतिक क्षेत्र में भी दावेदारी की आकांक्षाएं पैदा हुई। ऐतिहासिक रूप से सामाजिक- सांस्कृतिक धरातल पर पिछड़ा होने और निरंकुश चरित्र के चलते इस वर्ग को भाजपा की पिछड़ीधार्मिक कट्टरपंथी राजनीति रास आने लगी। हालांकि इन जातियों के बीच से उभरे मुलायम सिंह यादव, लालू यादव, नीतिश कुमार जैसे नेता और उनकी पार्टियां प्रमुख रूप से अपने सजातीय आधारों को बनाये रखने में फिलहाल कामयाब बनी हुई हैं लेकिन भाजपा ने भी इनके बीच अच्छी-खासी सेंधमारी कर ली है।

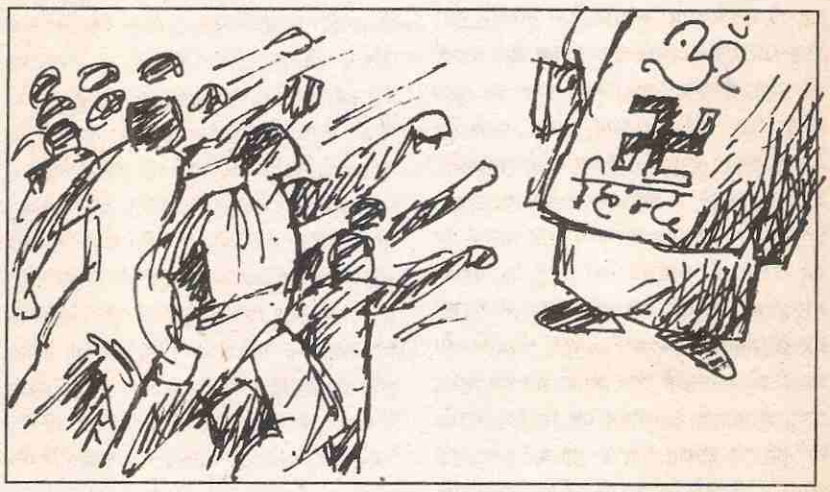

मध्य जातियों के साथ ही संघ परिवार ने उजड़े हुए लम्पट सर्वहाराओं के बीच भी अपनी खतरनाक पैठ बना ली है। संघ परिवार की विभिन्न शाखाओं द्वारा शहरी मुहल्लों और गांवों में योजनाबद्ध ढंग से आयोजित किये जाने वाले धार्मिक आयोजनों- भगवती जागरणों में इस वर्ग के युवा माथे पर केसरिया पट्टी बांधे बेहद उत्साही भक्तों के रूप में सक्रिय दिखायी देते हैं। गुजरात नरसंहार में संघ परिवार ने लम्पट सर्वहारा युवाओं की इस आबादी को बकायदा प्रशिक्षण देकर हत्याओं की उन्मादी भीड़ में तब्दील कर दिया था। इसके अलावा जिन 'आदिवासियों' को इस हत्याकाण्ड में शामिल बताया जा रहा है वे भी दरअसल उजड़े हुए भूमिहीन हैं। पूंजीवादी विकास ने इन 'आदिवासियों' से परम्परागत आजीविका के साधनों को छीनकर सड़कों पर ला पटका है। विभिन्न 'सुधार' कार्यों के जरिये आर.एस.एस ने इनके मानस को जहरीले साम्प्रदायकि भावनाओं से भरकर और बाकायदा रुपये देकर गुजरात में मुसलमानों पर कहर बरपा कराया। इसके साथ ही देश के ट्रेड यूनियन आन्दोलन पर हावी सी.पी.आई.,सी.पी.एम. जैसी नकली वामपंथी पार्टियों से जुड़ी 'एटक' व 'सीटू' जैसी ट्रेड यूनियनों के अवसरवाद व गद्दारियों के कारण निराश-हताश औद्योगिक मजदूर वर्ग के बीच भी पिछले एक दशक के दौरान भारतीय मजदूर संघ के जरिये आर.एस.एस. ने अपनी प्रभावी घुसपैठ बना ली है।

मध्य वर्ग के बीच आधार विस्तार

ऐतिहासिक कारणों से भारतीय मध्य वर्ग (शहरी और ग्रामीण दोनों) का अधिकांश हिस्सा आज भी पोंगापन्थी, अविवेकी और धर्मभीरू बना हुआ है। पश्चिमी समाजों की तरह जनवाद के मूल्य इसके जीवन दर्शन और दैनन्दिन आचार-व्यवहार के अंग नहीं बन पाये हैं। इसकी जगह सामान्ती निरंकुशता और अतर्कपरकता के मूल्य ही आज भी मुख्यत: इस वर्ग की जीवन शैली में रचे- बसे हुए हैं विभिन्न सामाजिक रुढ़ियों, वर्ण व्यवस्था के संस्कारों और कूप मण्डूकतापूर्ण कर्मकाण्डों में यह आज भी जकड़ा हुआ है। दरअसल न तो राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर में और न ही 1947 के बाद ही कोई ऐसा व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक जन आन्दोलन, विशेषकर हिन्दी पट्टी में, चला जो इस स्थिति को बदलता। चूंकि यह स्थिति देशी पूंजीवादी सत्ता को टिकाये रखने के लिए मुफीद है इसलिए शिक्षा व्यवस्था शासक वर्गों की मीडियाऔर सत्ता प्रतिष्ठानों से यह उम्मीद करना ही बेमानी है कि इनके जरिये कोई सार्थक प्रयास किया जाता। आर.एस.एस. की घोर पुरातनपन्थी, अतीतोन्मुख और जनवाद निषेधी विचारधारा और उसके कथित हिन्दू राष्ट्रवाद या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के फलने- फूलने के लिए मध्यवर्ग की जमीन ऐतिहासिक रूप से काफी उपजाऊ थी। इसीलिए जैसे ही 1980 के दशक में व्यवस्था का संकट नये दौर में प्रवेश करता है, महंगाई- बेरोजगारी की मार मध्यवर्ग की पीठ पर पड़नी शुरू होती है, भविष्य की अनिश्चितता गहराने लगती है तो विकल्प के अभाव में मध्य वर्ग का बड़ा हिस्सा संघ परिवार के आक्रामक प्रचार- अभियान से उसकी ओर खिंचता चला जाता है। जब आगे का रास्ता बन्द गली के छोर तक पहुंच जाये तो फिर पीछे मुड़कर देखने या नियति या भाग्य की शरण मे जाने के अलावा दूसरा कोई रास्ता नजर नहीं आता। इसके साथ ही जीवन की तकलीफों का जब वास्तविक कारण न समझ में आये और सही दुश्मन की पहचान धुंधली हो तो फिर अवास्तविक कारणों और छद्म दुश्मन से जूझने की हारी हुई मानसिकता पैदा होती है।

आज चाहे शहरी मध्य वर्ग हो या ग्रामीण- दोनों का सामाजिक जीवन भूमण्डलीकरण की नीतियों के चलते अधिकाधिक असुरक्षित होता जा रहा है। बेरोजगारी के काले साये इन वर्गों के युवाओं की आत्माओं में भी अन्धेरा भरते चले जा रहे हैं। कोई क्रान्तिकारी सामाजिक-राजनीतिक विकल्प नजर नहीं आ रहा है। ऐसे में ही इन वर्गों के हताश-निराश कुण्ठित युवाओं के बीच उन्मादी प्रचार करके संघ परिवार अपने खूनी 'हिन्दुत्व' की जड़े जमाने में कामयाब होता जा रहा है।

मक्सिम गोर्की ने फासीवादियों के सामाजिक आधार के बारे में एक जगह लिखा है कि निम्न मध्यवर्ग के बेरोजगार पीले चेहरे वाले हताश 'निराश' कुण्ठित युवाओं के बीच से फासिस्ट अपनी कतारों की भर्ती करते हैं। आज के भारत के मध्यवर्गीय युवाओं के संदर्भ में यह बात कितने सटीक ढंग से लागू हो रही है।

कैम्पसों में प्रभाव विस्तार और कुलीन प्रगतिशीलता

उच्च शिक्षा के कैम्पस भी हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों की घातक चपेट में आ चुके हैं छोटे शहरों या कस्बों के डिग्री कालेज ही नहीं दिल्ली विश्वविद्यालय और जे.एन.यू जैसे अभिजात और जनतांत्रिक माहौल वाले कहे जाने वाले परिसरों में भी काफी गाढ़ा भगवा रंग चढ़ चुका है। छोटे शहरों व कस्बों के उच्चशिक्षा कैम्पसों का वातावरण पिछड़े सामाजिक- सांस्कृतिक-गैरजनतांत्रिक परिवेश के बीच स्थित होने के कारण पहले से ही साम्प्रदायिक विचारों के फलने- फूलने के लिए अनुकूल था। इन कैम्पसों की छात्र राजनीति ममें मुख्यत: कुलकों एवं भूस्वामी वर्ग के छात्रों की पकड़ कायम थी जो जाति धर्म क्षेत्र की भावनाएं भड़काकर अपनी राजनीति की गोटी चमकाते थे। शिक्षक राजनीति के जातिवादी मठाधीशों और स्थानीय बुर्जुआ राजनीति के सरदारों का इन्हें खुला संरक्षण मिला करता है, यह भला कौन नहीं जानता। जैसे-जैसे देश की बुर्जुआ राजनीति की फिजां बदली है वैसे-वैसे इन कैम्पसों की छात्र राजनीति भी अपना चरित्र बदलती गयी है और इन कैम्पसों में संघ परिवार की विद्यार्थी शाखा अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद ने अपना मजबूत आधार बना लिया है। संघ के स्वयंसेवक शिक्षकों ने अपना भरपूर वैचारिक-व्यावहारिक मार्गदर्शन देकर योजाबद्ध ढंग ए.बी.वी.पी. के पांव मजबूत बनाने में मदद की है और कर रहे हैं।

लेकिन महानगरीय कैम्पसों की स्थिति इससे भिन्न थी। यहां का बेहतर जनतांत्रिक अकादमिक वातावरण और प्रगतिशील धर्मपनिरपेक्ष सोच वाले शिक्षकों की अच्छी खासी मौजूदगी लम्बे समय तक एबीवीपी की साम्प्रदायिक छात्र राजनीति के लिए पिछड़े वर्गों के कैम्पसों के मुकाबले प्रतिकूल बनी रही। लेकिन साम्प्रदायिक फासीवादी आक्रामकता का नया दौर शुरू होने के बाद स्थितियां तेजी से बदतली गयीं। एक तो कांग्रेसी छात्र संगठन एन एस यु आई की राजनीतिक संस्कृति की चरम पतनशीलता और एस.एफ. आई., ए.आई.एस.एफ., 'आइसा' जैसे नकली वामपन्थी छात्र संगठनों की नपुंसक प्रगतिशीलता और दूसरी ओर किसी प्रभावशाली क्रान्तिकारी विकल्प की गैरमौजूदगी ने ए.बी.वी.पी. को अपनी जड़े जमाने का सुनहरा अवसर दिया। कैम्पस में मौजूद 'प्रगतिशील व धर्मपरिपेक्ष ताकतों' ने आक्रामक भगवाकरण मुहिम का प्रतिकार जिस रक्षात्मक ढंग से किया वह भगवा ब्रिगेड की हौसला आफजाई करने वाला ही साबित हुआ। यह अभिजात-सुसंस्कृति प्रगतिशीलता और नखदन्तहीन धर्मनिरपेक्षता कैम्पस के गरीब सामाजिक पृष्ठभूमि वाले छात्रों को बिदकाने वाली ही साबित हुई। बन्द कमरों की गोष्ठियां- सेमिनार जिनमें अंग्रेजी में पर्चे पढ़े जाते हों अंग्रेजी में ही साम्प्रदायिक फासीवाद का गहन-गम्भीर वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता हो, कुछेक पोस्टर प्रदर्शनियां, फिल्म शो, मोमबत्तियां जलाने या देश की गंगा- जमुनी संस्कृति की दुहाई देने वाले कुछेक अन्य सांस्कृतिक जलसे ये सब आम छात्रों को विकर्षित करने वाले ही रहे। दरअसल, इन ताकतों का साम्प्रदायिकता विरोध सांस्कृतिक अन्दाज में या उत्सव मनाने से आगे नहीं बढ़ सका। इतना ही नहीं, 'सोने में सुहागा' यह कि साम्प्रदायिकता विरोध के इन अनुष्ठानों में एनजीओ वाले भी खुले छिपे रूप से शामिल होकर 'प्रगतिशील'- धर्मपरिपेक्ष- भजन कीर्तन गाते बजाते रहे या बाबरी मस्जिद की शहादत पर सालाना मातम मनाने पहुंचते रहे। एनजीओ से लुके छिपे चोंच लड़ाने वाले इन प्रगतिशीलों के मुंह से लिया गया भगत सिंह का नाम भी आम छात्रों की नजरों में भगत सिंह की

विरासत को कलंकित कर रहा है।

इतिहास का सबक और संघर्ष की रणनीति

आज हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों का जितना व्यापक और खतरनाक प्रभाव-विस्तार हो चुका है, राजनीति ही नहीं समूचे सामाजिक - सांस्कृतिक ताने-बाने में जिस गहराई तक इनकी पैठ हो चुकी है उसका मुकाबला अनुष्ठानों या प्रतीकात्मक विरोधों से कतई नहीं किया जा सकता। उल्टे इस तरह के विरोध इन ताकतों को मजूबत ही बना रहे हैं। आज जरूरत है एक जुझारू रणनीति और व्यापक जमीनी कार्रवाईयों की। लेकिन इन मानवद्रोही ताकतों से लोहा लेते समय हमें दुनिया में फासीवादी विरोधी संघर्ष के सबकों को नहीं भूलना चाहिए।

दुनिया में फासीवाद विरोधी संघर्ष के अनुभवों से निकला पहला सबक तो यही है कि संघर्ष की धार को उस पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के खिलाफ केन्द्रित किया जाये जिसके संकटों से ताकत पाकर आज देश ही नहीं पूरी दुनिया में फासीवादी ताकतें अपना सिर उठा रहीं हैं। हमें साथ ही यह बात भी भलीभांति समझनी होगी कि पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के खिलाफ इस निर्णायक ऐतिहासिक संघर्ष में सबसे मजबूत, अडिग और सबसे बड़ी सामाजिक शक्ति मेहनतकश अवाम ही हो सकता है। जब तक पूंजीवाद-साम्राज्यवाद जिन्दा रहेगा तब तक फासीवाद का राक्षस जिन्दा रहेगाऔर समाज को अपना ग्रास बनाता रहेगा। इसलिए हमें देश के भीतर हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवाद को निर्णायक शिकस्त देने के लिए किसी भी तरह के सुधारवादी भ्रमों में पड़ने समझौता परस्ती या चुनावी जोड़-तोड़ की पिलपिली रणनीति के चक्कर में पड़ने के बजाय जनसंघर्षों की क्रान्तिकारी रणनीति अख्तियार करनी होगी। हमें मेहनतकशों को फासीवाद के खिलाफ लड़ाकू सेनाओं के रूप में ढालने की तैयारी करनी होगी। शहरी औद्योगिक मजदूरों से लेकर छोटे-मोटे काम धन्धे करने वाले शहरी गरीब, ग्रामीण मजदूर व गरीब किसान व मध्यम वर्ग के लोग मेहनतकशों की इस विशाल सेना के ही हिस्से हैं। समाज के ये ही वर्ग हैं जो आज भूमण्डलीकरण की नीतियों से तबाह-बर्बाद हो रहे हैं, ठगे लूटे जा रहे हैं। लेकिन हताशा-निराशा व विकल्पहीनता में जी रहे इन्हीं वर्गों को 'हिन्दुत्ववादी' फासीवादी ताकतें अपने जहरीले झूठे प्रचारों के जरिये अपनी चपेट में ले रही हैं। इन्हीं वर्गों के युवाओं के बीच से ये ताकतें अपने सिपाहियों की भर्तियां भी कर रही हैं। लेकिन इतिहास का सबक यह भी है कि जब कोई क्रान्तिकारी विकल्प उभरकर सामने आता है और भविष्य की राहें दिखायी देती हैं, तो यही मेहनतकश आबादी फासीवादी ताकतों के खिलाफ सबसे मजबूती से मोर्चा सम्भालती है। इनमें भी मजदूर वर्ग सबसे आगे बढ़कर मोर्चा संभालता है। आज अगर मजदूर वर्ग का एक बड़ा हिस्सा भी साम्प्रादायिक फासीवादी दुष्प्रचार में बहकर अपने ऐतिहासिक कार्यभार से दूर खड़ा दिख रहा है तो सिर्फ इसलिए कि उसे अपनी ताकत का अहसास दिलाने वाली समाज की प्रगतिशील क्रान्तिकारी ताकतें ही उससे दूर खड़ी हैं। इसलिए, आज हमारे सामने यह कठिन चुनौती उपस्थित है। क्या मानवता के बेहतर भविष्य में आस्था रखने वाले सच्चे क्रान्तिकारी युवा इस चुनौती को स्वीकार करने के लिए आगे नहीं आयेंगे!

युवाओं को अग्रिम मोर्चे सम्भालने होंगे

इतिहास का यह भी सबक है कि जब भी कोई ऐतिहासिक कार्यभार या चुनौती उपस्थित हुई है तो उसे स्वीकार करने के लिए मेहनतकशों के बहादुर बेटे-बेटियां सदा ही आगे आते रहे हैं। आज भी यही होगा। अन्धेरे की ताकतें समाज को बर्बरता के राज्य में हमेशा के लिए नहीं ले जा सकतीं। आज भी सच्चे युवाओं को यह जिम्मेदारी निभानी ही होगी।

आज सच्चे युवाओं को साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों से लोहा लेने के लिए साहसपूर्वक पहलकदमी लेनी होगी। उन्हें हर मोर्चे पर इन ताकतों को टक्कर देनी होगी और जनता के सभी वर्गों के प्रचार-प्रसार गोलबन्दी एवं संगठन का काम अपने हाथ में लेना होगा। शिक्षा और रोजगार के बुनियादी अधिकार के लिए व्यापक छात्र - युवा आबादी को दूरगामी संघर्ष की दिशा में संगठित करने के साथ साथ साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के खिलाफ व्यापक, सघन और जुझारू वैचारिक-सांस्कृतिक अभियान संगठित करने होंगे। युवाओं को अपनी क्रान्तिकारी गायन टोलियां-नाट्य टोलिया संगठित करनी होंगी। अपने तमाम वैचारिक-सांस्कृतिक औजारों से लैस होकर मध्यवर्ग के छात्रों-युवाओं की व्यापक आबादी ही नहीं मेहनतकशों के बीच-औद्योगिक मजदूरों की बस्तियों, झुग्गी झोपड़ियों में जाना होगा और उनकी सोयी हुई आत्माओं को जगाना होगा। कैम्पसों में साम्प्रदायिकता विरोध की अपनी क्रान्तिकारी रणनीति के आधार पर प्रचार-प्रसार, संगठित करने की स्वतंत्र कार्रवाइयों के साथ-साथ जहां भी और जिस हद तक भी संभव हो सुधारवादी वामपंथी संगठनों-प्रगतिशील धर्मनिरपेक्ष शिक्षकों को एक व्यापक संयुक्त मोर्चे के अंतर्गत साथ लेने की कोशिश भी करनी होगी। क्योंकि हमें इतिहास का यह सबक भी नहीं भूलना चाहिए कि अन्धेरे की ताकतों के खिलाफ संघर्ष में किसी छोटी से छोटी चीज की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। ●

शहीदे आज़म भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु और गणेशशंकर विद्यार्थी के शहादत दिवस पर

"भारतीय रिपब्लिक के नौजवानों नहीं सिपाहियों कतारबद्ध हो जाओ। आराम के साथ न खड़े रहो और न ही निरर्थक कदमताल किये जाओ। लम्बी दरिद्रता को, जो तुम्हें नाकारा कर रही है, सदा के लिए उतार फेंको। तुम्हारा बहुत ही नेक मिशन हैं देश के हर कोने और हर दिशा में बिखर जाओ और भावी क्रान्ति के लिए, जिसका आना निश्चित है, लोगों को तैयार करो। फर्ज के बिगुल की आवाज सुनो। वैसे ही खाली जिन्दगी न गंवाओ। बढ़ो, तुम्हारी जिन्दगी का हर पल इस तरह के तरीके और तरतीब ढूंढ़ने में लगना चाहिए कि कैसे अपनी पुरातन धरती की आंखों में ज्वाला जागे और यह एक लम्बी अंगड़ाई लेकर जाग उठे।... तब एक भयानक भूचाल आयेगा, जो बड़े धमाके से गलत चीजों को नष्ट कर देगा और साम्राज्यवाद के महल को कुचलकर धूल में मिलादेगा और यह तबाही महान होगी।"

(हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन के घोषणापत्र से)